



(1936-2009)

ध्यान पत्रिका

प्रेरक : डॉ० शम्भू नाथ

M.Sc., Ph.D.

वर्ष-21

अप्रैल-2011

अंक-4



प्रकाशक

ध्यान सत्संग सभा

हिसार (हरियाणा), मो. : 09416164702, 09813294171

मन मन्दिर में : झाड़ू रोज लगाये जा

श्री बालकृष्ण गुप्ता

गाये जा, गायें जा, भगवान की महिमा गायें जा।

सुबह शाम इस मन मन्दिर में : झाड़ू रोज लगाये जा ॥

तरह-तरह के खेल हैं इसमें, दुनियां एक तमाशा है।

कहीं खुशी है कहीं गमी है, आशा कहीं निराशा है ॥

वो चाहे हंसाये, चाहे रूलाए, अपना फर्ज निभाये जा।

गाये जा, गायें जा.....

चिन्ता और चिता : इस जग में दोनों समान कहाती हैं।

इक जिन्दे को, एक मुर्दे को : दोनों समान जलाती हैं ॥

जो दुःख को दिखाये वही दुखड़े मिटाये,

चिन्ता दूर भगाये जा। गायें जा, गायें जा

कौन हमेशा रहा जगत् में: किसका यहां ठिकाना है?

बांध ले अपना बिस्तर बाबा, ये तो देश बेगाना है ॥

ये दुनिया है सराय, कोई आये कोई जाये,

पथिक यही समझाये जा। गायें जा, गायें जा

जीवन लक्ष्य

डॉ० त्रिभुवन भारद्वाज

हमारे जीवन का लक्ष्य: अपनी जीवात्मा का उत्थान है। सहज, सरल, स्वाभाविक ध्यान द्वारा ऐसा होना सम्भव है। इसके लिए आवश्यकता पड़ने पर अन्य सहायक क्रियाओं का लाभ भी उठा लेना चाहिए। जैसे

सही आहार, ब्रह्मचर्य, वितरण, सत्संग, योगासन, प्राणायाम आदि। ध्यान के समय मन ईश्वरीय क्षेत्र से आत्म शक्ति लेकर बुद्धि, शरीर और वातावरण को प्रदान करता है। बुद्धि में ज्ञान एवं वातावरण में शुद्धि और सात्विकता बढ़ती है। बाहर के भौतिक जीवन में भी चहुंमुखी विकास होता है। ईश्वर की शक्ति की कमी में : मन चंचल, चोर और कमजोर हो जाता है। बुद्धि एवं मायारूपी, रावण के आधीन मन: सदा दुःखी, चिन्तित एवं तनाव में ग्रस्त रहता है। ध्यान सब समस्याओं के लिए रामबाण औषधि है।

जा पर कृपा: राम की होई।

ता पर कृपा: करे सब कोई ॥

मन की शक्ति

📖 श्री सत्यनारायण शर्मा

हमारा मन : ऋषि नारद के समान काम करता है। भगवान के क्षेत्र से आनन्द को प्राप्त कर : संसार की सभी स्थूल, सूक्ष्म चीजों को शक्ति प्रदान करता है। सूर्य, चांद, सितारे, सभी देवी-देवता : मन द्वारा वातावरण में फैलाई शक्ति से अपना काम चलाते हैं। इस शक्ति द्वारा : प्रकृति का संतुलन बना रहता है। प्रकृति पर अधिकार जताने की कोशिश में अनिष्ट होने लगते हैं। हमें योगस्थ (श्रीमद् भगवद् गीता 2.48) होकर सारे काम करने चाहिए। सदा बदलने वाले बाहरी संसार की बजाए: कभी न बदलने वाले भगवान की, अन्दर से प्राप्ति करनी चाहिए। ध्यान के अभ्यास से गहरे विश्राम द्वारा हम जितनी चाहें अधिक से अधिक शक्ति प्राप्त कर सकते हैं। ध्यान के द्वारा हमें भगवान से नहीं: भगवान की चाहना करनी चाहिए। इसके लिए मनुष्य को स्वतन्त्र इच्छा

(Free Will) प्राप्त है। ध्यान द्वारा अपने अन्दर समाए संस्कारों को निकालना बहुत जरूरी है। इसके बाद समस्याओं को दूँढ़ते रह जाओगे ? दुःख का नामो निशान नहीं रहेगा। □

राम : आनन्द के प्रतीक

📖 डॉ० शम्भू नाथ

एक पुरानी कहावत है :-

‘गोधन, गजधन, बाजिधन और रतन धन खानि।

जब आवत सन्तोष धन, सब धन धूरि समानि ॥’

इस युग के महात्मा हमें सन्तुष्ट रहने की शिक्षा देते हैं।

कुछ लोग सन्तुष्ट क्यों और कुछ लोग क्यों नहीं?

जब तक इस प्रश्न का उत्तर सैद्धान्तिक स्तर पर प्राप्त नहीं होगा, और उसके आधार पर हम प्रयोगात्मक स्तर पर कोई रास्ता न ढूँढ़ लें : तब तक जीवन में सन्तोष आना सम्भव नहीं होगा। जिसके जीवन में आनन्द उभर आयेगा : उसके जीवन में असन्तोष हो ही नहीं सकता। जिस मात्रा में आनन्द उभरेगा : उसी मात्रा में सन्तोष आएगा और उसी मात्रा में अहं मिटेगा। जिस मात्रा में अहं है : उतनी ही मात्रा में असन्तोष है। यह आनन्द ज्यों-ज्यों अहं को मिटाकर गहरा सन्तोष देता है: त्यों-त्यों बाह्य जगत में मन के सुख ढूँढ़ने का प्रयास, अपने आप कम होता जाता है। इसी अवस्था को हम मन को जीतने की अवस्था कहते हैं। इसी आधार पर कहा गया है :-

‘मन के जीते जीत है, मन के हारे हार।’

इसका अर्थ यह है कि ज्यों-ज्यों आनन्द उभरता है : बाह्य सुखों की कमी हमारे जीवन से विलुप्त होने लगती है। क्योंकि यह आनन्द इच्छा-शक्ति (इच्छा-पूर्ति) के रूप में जागृत हो जाती है।

इसीलिए शंकराचार्य के जीवन में हम देखते हैं कि भले ही उन्हें स्वयं के लिए ज्ञानेन्द्रियों के (बाह्य) जगत के सुख की जरूरत न रही हो : लेकिन दूसरे के घर में सोने के आंवले बरसाने की क्षमता तो उनमें थी ही।

इसके प्रमाण हमारे आध्यात्मिक इतिहास में भी मिलते हैं : एक से बढ़कर एक ऋषि-महर्षि हुए हैं जिनमें आशीर्वाद और श्राप, दोनों देने की शक्ति थी। वे इनका प्रयोग भी करते थे। वे श्राप देने की शक्ति का प्रयोग केवल आनन्द की कमी के कारण ही करते थे। श्राप के माध्यम से वे जो दुःख दूसरों को देते थे : भविष्य में वे दुःख उलट कर उन्हीं पर आ जाते थे।

कर्मकाण्ड द्वारा प्राप्त शक्ति और उपासना द्वारा प्राप्त शक्ति में अन्तर

यह जो सन्तोष है : ईश्वरीय शक्ति को गलत रास्ते पर प्रयुक्त नहीं होने देता। आनन्द को उभारे बिना : कर्म काण्ड के माध्यम से जो शक्ति अर्जित की जाती है, वह भी ईश्वरी शक्ति ही होती है। लेकिन इस रास्ते से मन में सन्तोष उपलब्ध नहीं होता।

जो जीवन-दर्शन उपासना के माध्यम से होता है : वह कर्मकाण्ड के माध्यम से नहीं होता। इसका प्रमाण उस समय मिलता है : जब हम देखते हैं कि यद्यपि अर्जुन को इन्द्र दरबार में पहुंचने की और दिव्यास्त्रों को पाने की शक्ति तो थी, लेकिन उनके जीवन में वे क्षण भी आये: जब जीवन को सही रूप में समझने की शक्ति नहीं दिखायी दी। इसी कारण कृष्ण को उन्हें गीता के उपदेश द्वारा उपासना का मार्ग बताना पड़ा।

ऊपर हम लोगों ने विस्तार से देखा कि उपासना के रास्ते पर आनन्द है। आनन्द के साथ ही आन्तरिक चेतना भी उभरती है। दूसरे शब्दों में आन्तरिक चेतना की कमी में कर्मकाण्ड के माध्यम से ईश्वरीय शक्ति तो मिलती है : लेकिन आन्तरिक चेतना की कमी की वजह से यह

हमें सुख के बजाय दुःख देने लगती है। यह शक्ति रावण (रूलाने वाली) की शक्ति का रूप ले लेती है।

यदि किसी का स्वास्थ्य अच्छा है तो उसे जीवन का सुख नहीं समझा जा सकता, क्योंकि बीमार तो रावण भी नहीं रहता था। इसी तरह से जीवन के किसी एक पहलू का सुख आ जाना: इस बात का कभी प्रमाण नहीं हो सकता कि उसके जीवन में दुःख नहीं आयेंगे। जीवन में दुःख तो तब नहीं आवेगा, जब आन्तरिक चेतना उभर आये। दूसरे शब्दों में आन्तरिक चेतना सम्बन्धी “मैं” बाह्य चेतना के साथ-साथ रहने लगे और इसी अवस्था को हम कहते हैं कि हमारा “मैं” (Ego) मिट गया। स्पष्ट है कि वह “मैं” जो आन्तरिक चेतना के बिना बाह्य चेतना में है : उसका मिट जाना ही उस “मैं” का मिट जाना है, जो दुख का कारण है। इसी “मैं” (अहं) के मिटने के रास्ते को श्री गोस्वामी तुलसीदास ने रामायण में राम-रावण की लड़ाई के रूप में दिखाया है।

आन्तरिक आनन्द ही राम है।

हर मनुष्य इस आनन्द को महसूस क्यों नहीं करता?

उत्तर यह है कि आनन्द हमारे जन्म-जन्मांतर के संस्कारों से ढका रहता है। जमीन को सूर्य की रोशनी बादलों से छन कर ही मिलती है। हम अपने अन्दर के जीवात्मा की तुलना सूर्य से कर सकते हैं और उसकी शक्ति की तुलना सूर्य के प्रकाश से : जो प्रकट होने पर आनन्द का रूप धारण कर लेती है। यह जीवात्मा जन्म-जन्मांतर के संस्कारों से ढकी रहती है। संस्कारों की तुलना हम बादलों से और मन की तुलना जमीन से कर सकते हैं। मन को आनन्द संस्कारों से छनकर कुछ-न-कुछ मात्रा में हर क्षण मिलता ही रहता है। जिस समय यह मात्रा शून्य हो जाती है, उसी क्षण मृत्यु हो जाती है।

इन संस्कारों को हम लोगों ने उत्तेजना के नाम से भी जाना है। इन्हें हम अन्दर के विकार भी कह सकते हैं। ध्यान की विधि सीखते समय हमने देखा : कि जिन क्षणों में मन बन्धन मुक्त रहता है, उन्हीं क्षणों में संस्कार भावों के क्षेत्र में आकर निकलते हैं और उतनी ही ईश्वरीय शक्ति उभरती (प्रकट होती) है। इन संस्कारों के निकलते ही मन में आनन्द उभर आता है।

निकलती हुई उत्तेजना की शक्ति दुखदायी कैसे हो सकती है?

निकलती हुई यही उत्तेजना की शक्ति तो आनन्द को उभारने में सहायक होती है। यही अहम् (Ego) को मिटाने की प्रक्रिया है।

रामः मन में आनन्द के रूप में प्रकट होता है। यह ज्ञान हमें पहले से है कि आनन्द वह सुख है जो मन के सुख की भूख मिटा सकता है। जिसके मन में सुख की भूख मिट गई है : वह किसी दूसरे के सुख को छीनने के विषय में सोच भी कैसे सकता है? मन की यह प्रवृत्ति एक बहुत बड़ी शक्ति है। इसी का नाम प्रेम है। प्रेम तो शत्रुओं को भी मित्र बनाने की शक्ति रखता है। आन्तरिक चेतना की कमी में दसों ज्ञानेन्द्रियों के क्षेत्र के ज्ञान की शक्ति रावण की शक्ति है। आन्तरिक चेतना की कमी में बाह्य जगत की शक्तियां : ज्यों-ज्यों बढ़ती हैं, त्यों-त्यों मनुष्य इस गलतफहमी का शिकार होता जाता है कि शायद मनुष्य का जीवन ज्ञानेन्द्रियों के जगत की शक्ति द्वारा भी संवारा जा सकता है? यह गलतफहमी जितनी बड़ी होती है : अहं (Ego) भी उतना ही बड़ा होता है। अहं की सबसे ऊँची अवस्था को हम रावण कह सकते हैं।

राम और रावण की शक्तियाँ

अपने जीवन में हम यह देखते हैं कि ऐसा तो कोई नहीं मिलता जिसके अन्दर : दसों इन्द्रियों के जगत का ज्ञान एक साथ हो और ऐसा भी कोई नहीं मिलता : जो आत्मिक शक्ति से परिपूर्ण हो। कहने का अर्थ यह है :

कि रावण और राम का मिलना बहुत कठिन है। तो हम लोग अपनी बात केवल उस अहं तक ही सीमित रखेंगे: जिसमें यह गलतफहमी (मायाजाल) धीरे-धीरे बढ़ती जाती है कि क्या बाहर के ज्ञान के सहारे जीवन को संवारा भी जा सकता है?

जब मन की अवस्था ऐसी होती है कि उसे पूर्ण विश्वास रहता है कि जीवन को बुद्धि की शक्ति के सहारे संवारा जा सकता है : उस समय आत्मिक शक्ति घने संस्कारों से दबी रहती है। जब जीवन में ध्यान का अभ्यास शुरू किया जाता है : तब कुछ समय बीतने पर आनन्द उभरने लगता है और बुद्धि को यह महसूस होने लगता है कि उस से बड़ी शक्ति (आनन्द) भी है। ज्यों-ज्यों उसे इस अन्दर की शक्ति का एहसास होता जाता है : वह धीरे-धीरे अन्दर की शक्ति पर समर्पित होने लगती है। आनन्द पर बुद्धि के पूर्ण समर्पण के बाद मन की जो अवस्था होती है: वह अहंदाँ अवस्था है। हम पहले ही देख चुके हैं कि आनन्द ही राम है। इस सत्यता को वे साधक समझते हैं: जो कुछ दिनों के ध्यान के अभ्यास के बाद आनन्द उभारने में सफल हो गए हैं। जो नहीं सफल हुए हैं: वे भी इतना तो समझ ही सकते हैं कि मन सदा ही सुख और आनन्द के बीच में रहता है। इसलिए जिन क्षणों में मन किसी सुख में लिप्त है : यदि आनन्द उभरा और मन को अन्दर की ओर खींच ले गया, तो जिस दिशा में मन सुख ले रहा था, उसकी विपरीत दिशा से ही आनन्द उभरेगा। अभ्यास के आरम्भ में केवल छिछले स्तर के विकार निकलते हैं। मनुष्य के गहरे विकार निकलने में तो हमेशा ही समय लगता है। गहरे विकार निकलने के पहले ही मन ध्यान की शक्ति पर समर्पित हो चुका होता है। इतना तो हम जानते ही हैं कि जीवन के दुःखों का कारण: केवल संस्कार हैं। रामायण कहती है कि दुःख देने वाले राक्षस हैं : तो संस्कारों की शक्ति ही तो राक्षस हुए।

संस्कारों की शक्ति दो रूपों में है :-

(1) समाते हुए संस्कारों की शक्ति और

(2) निकलते हुए संस्कारों की शक्ति।

जिस समय संस्कार समाते हैं : उस समय राक्षसों की (दुःख देने वाली) शक्ति बढ़ती है और जिस समय राक्षस मरते हैं : उस समय निकलते हुए संस्कारों की शक्ति काम करती है। कहते हैं कि राम की सेना में एक से बढ़कर एक योद्धा थे। सेना ने तो केवल निकलते हुए संस्कारों की मदद की। ध्यान करने से तरह-तरह के विकार निकलते हैं। विकार हर स्तर पर हैं: जैसे शारीरिक, मानसिक तथा वातावरण के।

प्रारब्ध क्या है?

एक जगह तो रामायण यह कहती है कि जीवन के सारे पाप काटे जा सकते हैं, लेकिन दूसरी तरफ यह भी कहा जाता है कि **“प्रारब्ध काटे नहीं कटे।”** हमें पाप और प्रारब्ध का अन्तर अवश्य समझ लेना चाहिए। हमने ऊपर देखा कि समाये हुए संस्कार ही पाप हैं।

इन संस्कारों के पास दो तरह की शक्तियां हैं :-

(1) संस्कार जो हमारे अन्दर समा जाते हैं: यही पाप की शक्ति है।

(2) निकलते हुए संस्कारों की शक्ति: इसी को प्रारब्ध कहते हैं।

कमरे में समाती हुए गन्दगी की शक्ति का फल तो यह है कि कमरे में बैठने में खराब लगता है। लेकिन कमरे की सफाई के समय जो गर्द (गन्दगी) उड़ती है : वह भी उस समय किसी को अच्छी नहीं लगती। कमरे की सफाई हो या शरीर, मन, बुद्धि के निकलते हुए विकार: ये कुछ कष्ट तो देंगे ही। यही प्रारब्ध हैं। साधना के रास्ते पर यदि साधक को ऐसी समस्याओं का हल न मिला तो वह हताश होकर बीच में ही साधना छोड़ देगा।

प्रारब्ध कैसे कटें ?

हमारे वेदों में तो न मालूम कितने मन्त्र हैं: जिनको जीवन में सिद्ध कर लेने के बाद मनुष्य जीवन के अलग-अलग पहलुओं की बड़ी-से-बड़ी समस्या के समाधान और क्षमता प्राप्त कर लेता है। उदाहरण के लिए हनुमान चालीसा या गायत्री मन्त्र। तरह-तरह के मन्त्रों के स्मरण द्वारा संकल्प के सिद्धान्त के आधार पर ईश्वरीय शक्ति को समय-समय पर उतार कर : तरह तरह के प्रारब्ध काटे जा सकते हैं। ये मन्त्र ही वानर सेना हैं और इनकी मदद से ही ये प्रारब्ध कटते हैं। ज्यों-ज्यों प्रारब्ध कटते हैं : अहं (Ego) मिटता जाता है और आन्तरिक चेतना उभरती जाती है। धीरे-धीरे सबसे उच्च स्तर का अहं (जो रावण का प्रतीक है) भी मिट जाता है।

प्रश्न यह भी उठता है कि इस राम रावण की कहानी में सीता की तो कहीं बात नहीं की गई और न ही सीता हरण की ?

मनुष्य ज्यों-ज्यों इस साधना में प्रगति करता है : धीरे-धीरे आन्तरिक चेतना (Internal Consciousness) के चारों स्तर जागेंगे। मनुष्य जागृत अवस्था से भावातीत चेतना की ओर मुड़ेगा और फिर कुछ बड़ी-बड़ी समस्याएं जीवन में आयेंगी। ऊपर बतायी गयी साधना के सिद्धान्तों पर ही: और बड़े-बड़े राक्षस भी जागृत होंगे। तब मनुष्य भावातीत से ब्रह्मी चेतना की ओर बढ़ेगा, फिर ईश्वरीय चेतना की ओर। अन्त में अद्वैत चेतना की ओर। अद्वैत चेतना तक पहुंचने के पहले: न मालूम कितनी बड़ी-बड़ी समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है। तम के गहरे से गहरे संस्कार उभरेंगे : और

जब ये सब संस्कार निकल जायेंगे, तभी मनुष्य राम स्वरूप होगा। उस समय मनुष्य का जो जीवन होगा : वही तो सीता होगी।

राम-स्वरूप होने के लिए एक से ज्यादा जन्म भी लेने पड़ सकते हैं और यह सब एक जन्म में भी संभव है। लेकिन वह जीवन जो मनुष्य को राम-स्वरूप होने पर मिलेगा : वह इसके पूर्व कहां था ?

इसका उत्तर यही है कि : सीता तो रावण के मरने के बाद अर्थात् सबसे सूक्ष्म स्तर के तम के संस्कारों के निकल जाने के बाद ही, राम-स्वरूप मनुष्य को मिल पायेगी। संक्षेप में श्रीगोस्वामी तुलसीदास द्वारा बताई गई राम और रावण की लड़ाई, जो कि केवल अहंकार (Ego) को पूर्ण रूप से मिटाने का रास्ता है : यही है। □

ज्ञान : विवेक का सार

(सन्यासी गीता)

मेरा राखे आसरा, मुझ में लाये चित्त।
मन में एकाग्र हो : मुझे ध्यावे नित्त॥
ज्ञान : विवेक का सार यह, मैंने दिया बतलाय।
ज्ञान से उत्तम और कुछ, दृष्टि में नहीं आय॥
यतन करे : सिद्धि मिले, कोटिन में कोई एक।
सिद्धों में कोई एक ही, जाने ज्ञान विवेक॥
बन्धन रूप : प्रकृति है, चेतन इसमें जोय।
बंधन : इस प्रकार है, ज्यों मनका सूत में होय॥
त्रिगुणात्मिका : माया मेरी, मुश्किल कहे जहान।
जो आवे शरणे मेरी : उसे तरा ही जान॥
चार प्रकार : मनुष्य मोहे जानें, मेरी भक्ति चित्त में ठाँनें।
रोगी पीड़ित दुखिया ध्यावें, जिज्ञासु प्रेमी सीस नवावें॥
धनका इच्छुक धनको पावे, ज्ञानी मेरी शरण में आवे।
चारों को मैं उत्तम जानूं, ज्ञानी को विशेष पहचानूं॥
ज्ञानी प्रेम करे चित्त लाय, मेरा रूप होय : मोहे ध्याय॥
कइ जन्मों से आ मिले, ज्ञानी पुरुष जो होय।
निश्चय ही ऐसा भक्त, मोहे प्राप्त होय॥
कोई भी पूजो देवता : फल दाता मोहे जान।
सर्व देव के प्रेमी जन : मोहि मिलत ही आन॥

-प्रस्तुति : अनु जैन (भिवानी)

स्वयं के साथ रहिए

✍ कर्नल शिवदान सिंह

महर्षि रमण दक्षिण भारत में भगवान के नाम से प्रसिद्ध हैं। वे हमेशा शांतचित्त रहते थे। एक बार शिष्यों ने उनसे इस अथाह शांति का रहस्य पूछा : तो उन्होंने उत्तर दिया कि स्वयं के साथ रहिए। यह वह रहस्य है, जिसमें असीम शांति प्राप्त होगी। उन्होंने विस्तार से बताया कि अपने साथ रहने का तात्पर्य: ब्रह्म के साथ रहना है, क्योंकि परब्रह्म परमेश्वर का ही अंश हमारे अंदर जीवात्मा के रूप में विद्यमान है। और यदि हम वास्तव में भगवान के दर्शन चाहते हैं: तो अपने दर्शन ध्यान (Meditation) द्वारा कीजिए: अपने आप हरिदर्शन हो जाएंगे। परमात्मा परमशांत है, सच्चिदानंद है। इसलिए उनके साथ रहने से परमशांति अपने आप प्राप्त होगी। परंतु इस मार्ग में सबसे बड़ी बाधा मन की है : मन (भ० गीता 6.33 & 6.34) हमें स्वयं के साथ स्थापित नहीं होने देता। साथ ही भौतिकता हमें शांति से दूर रखती है। चित्त और मन में थोड़ा सा भेद है। चित्त : जीव अपने त्रिगुणात्मक गुणों को पूर्व जन्म से लेकर आता है। जैसे यदि पूर्व जन्म में सतोगुण की प्रधानता थी : तो जीव अपने नए जन्म में, जन्म से ही सद्मार्ग पर चलने वाला धार्मिक प्रवृत्ति का होगा। मन का निर्माण धीरे-धीरे इस जन्म के कर्म निर्धारित करते हैं।

अगर आग के पास बैठोगे जा कर।

उठोगे एकदिन कपड़े जला कर॥

कपड़े भी गर तुम बचाते रहे।

सेक तो फिर भी खाते रहे॥

यदि आग से बचना है तो ज्वलनशील पदार्थों को उससे दूर रखिए। इसी प्रकार हम अपनी ज्ञानेन्द्रियों पर संयम रखें तथा उन्हें भटकने वाले पदार्थों से दूर रखें। मनुष्य ही ऐसा जीव है जिस को अपने कर्मों पर पूर्ण अधिकार है। अपने कर्मों को सच्चे व जीव के कल्याण में लगाएं तथा अगले जन्म के लिए एक सतोगुणी चित्त लेकर जाएं। जिससे हमें शीघ्र

अति शीघ्र : इस जन्म-मरण के चक्कर से मुक्ति मिले। मनुष्य ईश्वर का ही अंश है। ईश्वर के समान ही समस्त गुण मनुष्य का वास्तविक स्वरूप है। निरंतर शांति, प्रेम और आनंद में निवास करना ही मनुष्य का सच्चा स्वभाव है। तपस्या, सेवा, ध्यान आदि मनुष्य का सहज स्वभाव है, जिसके लिये विशेष प्रयास की आवश्यकता नहीं होनी चाहिये। महर्षि रमण के शब्दों में :-

“ ध्यान तुम्हारा सच्चा स्वभाव है। इस अवस्था से तुम्हें विचलित करते हैं: तुम्हारे विचार। जब ये विचार हट जायेंगे : तब तुम अकेले बाकी रह जाओगे। अर्थात् विचारमुक्त ध्यानावस्था में स्थाई रूप से निवास करोगे। इन विचारों को दूर करने की प्रक्रिया ही ध्यान(Meditation) है। ध्यान में सब तरह के विचार उठा करते हैं : ये वही विचार हैं, जो तुम्हारे अंदर छिपे हुए हैं। उन्हें बाहर निकालना ही है। यदि वे नहीं निकलेंगे तो उनका नाश कैसे होगा ? ये विनष्ट होने के लिए ही उठते हैं। विचारों के नाश होने पर मन निर्विकार हो जाता है। जो कुछ काम करो: वह तुम्हारा नहीं है। ऐसा ख्याल अपने समक्ष रखो तो ये विचार मन में जमेंगे ही नहीं। पुराने संचित विचारों को निकलने के लिए ‘ ध्यान ’ आवश्यक है। काम अपने आप चलता रहेगा और तुम्हारी शांति निश्चल टिकी रहेगी। ”

मन में विचारों का विक्षेप हटाने के लिए और बुद्धि में स्थिरता हेतु ध्यान साधना विशेष उपयोगी है।

रामचरित मानस में भगवान को ‘प्रकृति पार’ और ‘सब उरवासी’ कहा गया है। भगवान की प्रकृति अष्टधा है। पंचभूत शरीर और मन-बुद्धि-अहं: इन आठों से ऊपर अथवा पार: भगवान से जुड़ने के लिए ध्यान साधना (Meditation) है। वही प्रकृति पार प्रभु सभी जीवधारियों में भी साकार है। इसलिए भगवान के इस रूप की सेवा करना ही ध्यान है। ध्यान के लिए साधक में यह भाव होना चाहिए : कि यह जगत मेरे सेव्य राम का

ही रूप है। मैं इन जगन्निवास विश्वात्मा स्वामी का सेवक हूँ -

‘मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवन्त’।

जैसे भांवर पड़ते ही कन्या यह मान लेती है : कि जिनके साथ मेरी भांवर पड़ी हैं, ये मेरे हैं और मैं इनकी हूँ। इस आत्म-स्वीकृति रूपी समर्पण में कन्या को कोई भी क्रिया नहीं करनी पड़ती। इस अपनत्व को आगे बनाये रखने के लिए भी उसे किसी तरह का कोई भी प्रयास नहीं करना पड़ता। सम्बन्ध जुड़ जाने के बाद वह अपने पति और उसके घर परिवार का काम निस्वार्थ भाव से करती है। इसी तरह हम ध्यान के बार बार के अभ्यास से प्रकृति पार प्रभु से जुड़ते हैं। अन्य प्राणियों की सेवा करना पत्नी द्वारा पति के घर के काम करने के समान है। भगवान के प्रति समर्पण हो जाने पर प्रभु सेवा के कार्य स्वतः होते हैं। जब तक ऐसा न हो, तब तक हम जब कोई काम करें : उस समय वह हमारा नहीं है, अपितु भगवान का काम है। यह विचार अवश्य बना लेना चाहिए। यह विचार रखकर कार्य करने से मन अवश्य ही शांति और आनन्द की अनुभूति करेगा।

प्रकृतिपार जो भगवान हमारे भीतर व्याप्त हैं : वे अगणित विचारों या संस्कारों से ढके हुए हैं। जागृत अवस्था में विभिन्न परिस्थितियों, वस्तु, व्यक्ति अथवा घटना के सम्पर्क में आने पर इन सबके अनुकूल, प्रतिकूल प्रभाव : हमारे मन में एकत्र होते हैं और संस्कार के रूप में अंदर जमा हो जाते हैं। यही संस्कार हमें अपने आत्म स्वरूप से दूर कर देते हैं। ध्यान में जब हम आंख बंद करके बैठते हैं : तो कभी दो दिन पहले की घटना का स्मरण आता है, तो कभी दस वर्ष पहले की घटना उभरने लगती है। उभरने से पूर्व यह घटना दबी पड़ी थी : बिना निकले दबी ही रहती। हमें ध्यान के अभ्यास (भ० गीता 6.35 & 6.36)से विचारों को निकलने का अवसर देना है। निष्क्रियता का अवसर पाते ही विचार स्वतः निकलने लगते हैं। इस तरह के निरन्तर सतत् अभ्यास से महर्षि

रमण की वाणी को हम साकार होते देखेंगे : कि

‘जब इन विचारों को हटा दिया जायेगा, तब तुम अकेले बाकी रह जाओगे : अर्थात् विचार मुक्त ध्यानावस्था में रहोगे। यही तुम्हारा सच्चा स्वभाव है।’

‘विचारों को दूर करने की क्रिया को ‘ध्यान’ कहते हैं।’

अंत में इतना और जान लें कि दिन में तीन बार बीस-बीस मिनट के लिए निष्क्रियता के अभ्यास द्वारा शरीर, मन, बुद्धि की स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर गति आवश्यक है। साधक सारे काम करता हुआ भी ईश्वर में रमण करता है: यही सच्चा ध्यान है और यही मानव का वास्तविक स्वभाव है।

ध्यान माला

श्री कुबेर प्रसाद ‘गुप्त कबीर’

दोहा-15 : तैंतीस कोटी देवता, खण्ड शक्ति सम्पन्न।

मानव योनि लहै बिना, जाने उन्हें विपन्न ॥

कहते हैं कि इस वायुमण्डल में दो तरह के प्राणी हैं। एक वे जिनके पास शरीर है और दूसरे वे जिनके पास शरीर नहीं हैं, जिन्हें अशरीरी भी कहते हैं। ये अशरीरी प्राणी उच्च तथा निम्न दोनों स्तरों के होते हैं। निम्न स्तर की अशरीरी जीवात्माएं, जिन्हें भूत-प्रेत, पिशाच, चुड़ैल इत्यादि कहते हैं: अपनी अतृप्त वासनाओं की पूर्ति के लिये मनुष्य के शरीर का कभी-कभी उपयोग कर लेती हैं और उन्हें दुःख भी देती हैं। परन्तु उच्च स्तर की अशरीरी जीवात्माएं : देवता कहलाती हैं, क्योंकि ये मनुष्यों को कुछ देती ही हैं, सीधे उनसे कुछ नहीं लेतीं।

जीवात्माओं के उत्थान की संभावना मात्र शरीरधारी होने पर ही है। मनुष्येतर शरीरधारियों में यह उत्थान धीमा, सीमित और निश्चित रहता है। केवल मनुष्य शरीरधारी जीवात्मा ही ध्यान साधना (Meditation) का सही पथ पाकर : तीव्रगति से असीमित उत्थान करने-यहां तक कि ब्रह्म

स्वरूप होने में समर्थ है।

इसीलिये इस दोहे में कहा गया है कि तैंतीस कोटि (असंख्य) देवता भी, जिनके पास देने के लिये खण्ड की कुछ शक्तियों भी हैं, जब तक मानव-योनि नहीं प्राप्त करते : वांछित उत्थान नहीं कर सकते। देवताओं की इस स्थिति को ही विपन्न (दयनीय) कहा गया है। □

नोट :- 1. प्रत्येक रविवार को बुधला सन्त मन्दिर नज़दीक बस स्टैंड, हिसार में पारिवारिक सत्संग शाम को 4 बजे से 6 बजे तक होता है। आप सभी सपरिवार सादर आमन्त्रित हैं।

2. ध्यान सम्बन्धी अपने अनुभव, लेख, आलोचना (Comments), अनुभूतियां, प्रश्नोत्तर, शंका-समाधान इत्यादि इस पते पर भेज सकते हैं :-

-सुरेश कुमार गुप्ता

1618, अर्बन एस्टेट-II,

पुष्पा कम्पलैक्स के पीछे, हिसार-125005

PRINTED MATTER